International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.alleducationjournal.com
Volume 1; Issue 2; February 2016; Page No. 45-47

आधुनिक कविता में व्यक्त उदात्त सौंदय

सुनीता रानी

हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

'सौंदर्य' शब्द की एक व्युत्पत्ति और है,-'सुन्दं राति इति सुन्दरम्, तस्य भावः सौंदर्यम्। 'सुन्द' को जो लाता हो वह सुन्दर है, और उसका भाव जहाँ हो, वह 'सौंदर्य' कहलाता है। सुन्द पूर्वक 'रा' (धातु) अर्थात् 'आदाने' (लाना) धातु से औणादिक 'अच्' प्रत्यय से 'सुन्दर' शब्द तथा ''गुणवचन ब्राह्मणादिभ्यः प्यञ्'' इस पाणिनि सुत्र से 'प्यञ्' प्रत्ययोपरान्त 'सौंदर्य' शब्द व्युत्पन्न हुआ।

त्र'सुन्द' का अर्थ है ''कर्तनी'', अर्थात् जो कैंची की तरह काटने वाला हो, उसको जो लाता हो, वह 'सुन्दर' हुआ। 'सौंदर्य' हृदय पर, नेत्र के द्वारा, कैंची की सी काट वाला पक्का प्रभाव करता ही है, वह कौन नहीं जानता !

त्रइसी प्रकार एक व्युत्पत्ति और भी विचारणीय है। बोली में 'अचानक' शब्द का रूपान्तर 'अचानचक' है, किन्तु सतत बाहुल्य प्रयोग की धारा से इस 'अचानचक' के 'अ' का भी लोच हो गया। इस प्रकार इस मौलिक शब्द 'अचानक' का रूप ''चानचक' हो गया जिसका प्रतिदिन के व्यवहार में अधिक प्रयोग होता है। इसी तथ्यानुसार संस्कृत शब्द 'असून' अर्थात् 'प्राणों को' तथा 'ददाति' ='देता है', अर्थात् जो प्राणों को दे वह 'सुन्दर' हुआ। इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'असु' शब्द के आकार का लोप ('अचानक' की तरह ही) हो गया तथा मुखसुखार्थ दीर्घ ऊ-कार के स्थान में ह्रस्व उ-कार हो गया-यथा, संस्कृत 'पुत्र' शब्द का पालि भाषा में 'पुत्त' होता है। इस प्रकार इस व्युत्पत्ति से 'सुन्दर' शब्द का अर्थ 'जो प्राणों को दे' अर्थात्, 'जो जीवन या आनन्द दे' - यह हुआ।

त्रश्रृंगार-रसमयी रचना 'हिंडौला' में कविवर 'रत्नाकर' ने सौंदर्य के जो चित्र अंकित किए हैं वे भी रीतिकालीन साँचे से ही निकले हैं। हाँ, अलबत रंगो की ओर कवि का अच्छा ध्यान है; पर रंग वे ही-पीत, नील, सेत, लाल आदि। इन रंगों से आगे बढ़कर अन्य प्रकार के रंगों व उनके सूक्ष्म मिश्रणों की ओर इन की कोई दृष्टि नहीं जाती।

त्रयह तो हुआ परम्परागत सौंदर्य-वर्णन। पर, इस युग सौंदर्य-दृष्टि इससे कुछ आगे भी बढ़ी। एक देश-भक्त वीर भी अब छायावादोत्तर कवियों ने सौंदर्य देखा। पर विचार-(१) मानवीय सौंदर्य, तथा (२) प्राकृतिक सौंदर्य-इन दो शीर्षकों के अंतर्गत हो सकता है। पहले मानवीय सौंदर्य को लें-

छायावादोत्तर काव्य में स्त्री-सौंदर्य-वर्णन के चित्र तो अधिकांश में वे ही पुरोन श्रृगांरोपयोगी साँचे में ढले हुए हैं। उनमें कोई विशिष्ट प्रवृत्ति लक्षित नहीं होती।

स्त्री-सौंदर्य से आगे बढ़कर इस सौंदर्य को देखना सौंदर्य-दृष्टि के विचार का सूचक है। दो चार उदाहरण लीजिए-

ठाढ़े हरि तरनि तनैया तीर।
संग श्री कीरिति कुमारी पहिनी झीने चीर।।
उरनि फूलन माल जा पै भँवर गन की भीर।।
हाथ कमल लिए फिरावत राधिका बलबीर।।
साँझ समय सुहावनी तहँ बहत त्रिविध समीर।।[१]

हिंदी काव्य के पाठक के लिए इन सौंदर्य-चित्रों में कोई नवीनता नहीं है।

प्रेमघन जी की सौंदर्य-दृष्टि भी पुरानी है। वही उपमा-उत्प्रेक्षा, वही चमत्कार-प्रवृत्ति और वही नख-शिख, मुख, अधर, नेत्र, कुच, केश आदि का पुराने ढंग का आलंकारिक सौंदर्य-वर्णन ! हाँ, कहीं-कहीं उत्प्रेक्षा आदि का सौंदर्य अच्छा बन पड़ता है। जैसे-

मुख मंडल पै कुन्तल को, कहि रेसम के सम दूसत है।
अलि चौर सिवार औ राहु बृथा, यमपास मिसाल मसूसत है।।
कवि भूले सबै धन प्रेम सुनो, सुधा संपत्ति को मिलि मूसत है।
जनु सारद पूनव के निसि में, जुरि व्याल सबै ससि चूसत है।।[२]

स्त्री-सौंदर्य से आगे बढ़कर इस सौंदर्य को देखना सौंदर्य-दृष्टि के विचार का सूचक है। कवि कितनी तन्मयता से अपना चित्र अंकित करता है-

सुनत बीर इक वृद्ध नरन के सम्मुख आयो।
श्वेतसिंह मोछ जिमि गुहा छाँड़ि बाहर दरसायो।।
सुभ्र मोछ फहरात सुजस की मनहुँ पताका।
सेत केस सिर लसत मनहुँ थिर भई बलाका।।
अरून बदन ढिग सेत केश सुन्दर दरसायो।
वीर रसा है मनु घेरि रह्यौ रस सांत सुहायो।।
रवि ससि मिलि इक ठौर उदित सी कांति पसारे।
पीन हृदय आजानु बाहु स्वेताम्बर धारे।
कटि पै माथा कंध धनुष कर में करवाला।
परि पीठ पे ढाल गुलाबी नैन बिसाला।।
सिंह ठवनि निरमय चितवनी चितवत समुहाई।
तनदुति फैली छूटि परत धरनी पर आई।।[३]

इस ढंग का पुरूष-दृष्टि जब मानव-जगत् के घेरे को पार कर प्रकृति जगत् की ओर भी बढ़ चली थी। प्रकृति के प्रति दृष्टि तो रीतिकाल में भी थी, पर उस समय वह नायक-नायिकाओं के सुख-दुःख में ही रंजित दिखलाई जाती थी; नायक-नायिका के मिलन में आनन्दोल्लासपूर्ण तथा विरह में खिन्न और शोकाकुल। छायावादोतर कवियों में प्रकृति-प्रेम की सामान्य प्रवृत्ति नहीं थी। द्विवेदी-काल के उतरार्द्ध तथा छायावाद काल में वह पर्याप्त रूप में दिखाई पड़ी। आलोच्य-युग में इस परिवर्तन का सूत्र-पात अवश्य हो गया था। तथ्य तो यह है कि सामाजिक-राजनैतिक आन्दोलनों की सरगर्मी में कवियों को इतना अवकाश ही नहीं था कि वे मानव-जगत् से कुछ छुट्टी पाकर शांत व एकांत क्षणों में प्रकृति के नाना रूपों को

सूक्ष्मता व तल्लीनता के साथ पाते। जो हो, दस क्षेत्र में भी छायावादोत्तर कवि ही अग्रगण्य हैं।

मानवीय-सौंदर्य से आगे उनके स्वतन्त्र प्रकृति-प्रेम का न्यूनाधिक परिचय देती है। इस दृष्टि से 'यमुना-वर्णन' तथा 'गंगा-वर्णन' नामक कविताएं ऐतिहासिक महत्त्व की हैं। उदाहरणार्थ-

तरनि तनूजा तट तमाल तरूवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहुँ सुहाये।।
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा।।
कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन।
कहुँ सैवालन मध्य कुमदिनी लगि रही पाँतिन।।
तिन पैं जेहि छिन चन्द जाति राका निसि आवति।
जल में मिलि कै नभ अवनी लौं तान तनावति।।
होत मुकुर मय सबै तबै उज्जवल इस ओभा।
तन मन नैन जुड़ावत देखि सुन्दर सो सोभा।।

सो को कवि जो छवि कहि सकै ता छन जमुना नीर की।
मिलि अवनि और अम्बर रहत छवि इसकी नभ तीर की।।
परत चन्द प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहार लहि नचत कबहुं सोई मन भायो।।[४]

इस प्रकार 'गंगा-वर्णन' की ये पंक्तियाँ देखिये-

नव उज्जवल जल धार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरित बूँद मध्य मुक्ता मनि पोहति।।
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जनु जन गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत।।[५]

उपरोक्त वर्णनों में ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये वर्णन सर्वथा मानव-निरपेक्ष है और प्रकृति के प्रति कवि के स्वतन्त्र रति-भाव की सूचना देने वाले हैं। यद्यपि इनमें अभी, रीतिकालीन संस्कारों के प्राबल्य से, अलंकारों की ही प्रधानता है किंतु सूक्ष्म ब्यौरों पर भी कवि की दृष्टि जाने लगी है।

कवि ने प्रात समीरन का भी कैसा सुन्दर वर्णन किया है, देखिए-

आप देत थपकी गुलाब चुटकार, बालक खिलावै देखें प्रात की बयार।
जगावत जीव जग करत चैतन्य, प्रान तत्व सम प्रात आवे धन्य धन्य।
गुटकत पक्षी धुनि उड़े सुख होत, प्रात पौन आवै बन्यौ सुन्दर कपोत।
नव मुकुलित पद्म पराग के बोझ, भार वाही पौन चलि सकत न सोझ।
छुअत सीतल सबै होत गात आत, स्नेही के परस सम पवन प्रभात।।[६]

'स्नेही के परस सम पवन प्रभात' में उपमा की नवीनता और मौलिकता ध्यान देने योग्य है।

'बकरी-विलाप' नामक कविता में कवि ने अपनी भूतमात्रव्यापिनी सहानुभूति का अच्छा परिचय दिया है। चेतना की उच्च श्रेणी के जीव मनुष्य से आगे बढ़कर बकरी आदि के प्रति यह प्रेम-भावना महत्वपूर्ण है। अंग्रेजी-काव्य के स्वाभाविक-स्वच्छंदतावाद (Romanticism) के आरम्भ में काउपर (Cowper) और ब्लैक (William Blake) ने पशु-पक्षियों के प्रेम का चित्रण आरंभ करके इसी व्यापक व गंभीर सहानुभूति का परिचय दिया था और काव्य-क्षेत्र में एक नवीन प्रकृति का प्रवर्त्तन किया था।[७] भारतेन्दु की 'बकरी-विलाप' की कुछ पंक्तियाँ देखिए-

मुख गद्गद् तन स्वेद कन कंठहु रूंध्यौ जात।
उलट्यौ परत करेजवा जिय अतिही अकुलात।।
मानुष जन सों कठिन कोउ जन्तु नाहि जग बीच।
बिकल छोड़ि मोहि पुत्र ले हनत हाय सब नीच।।[८]

प्राचीन संस्कृत-कवियों तथा अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों के प्रकृति-वर्णन के अनुशीलन से हमने जो एक परिष्कृत सौंदर्य-दृष्टि बना ली है उससे भले ही ये पंक्तियाँ उतनी रमणीय न जान पड़ें, पर यदि हम इस बात पर विचार करें कि कैसी विषम परिस्थितियों में इन कवियों ने प्रकृति-निरीक्षण की आरम्भिक ललक दिखाई थी तो इनके वर्णन की तुतलाहट भी रीझने की वस्तु होगी। माना कि इसमें वह सूक्ष्म प्रकृति-पर्यवेक्षण नहीं, वे अलौकिक रहस्य-स्पर्श नहीं, वह आश्चर्य-मिश्रित आनन्द की भावना व अज्ञात के प्रति रसात्मक जिज्ञासा व लपक-झपक नहीं, फिर भी इन पंक्तियों में निहित भावना तथा कल्पना सर्वथा नवीन दिशा की ओर उड़ने के लिए पाँखें फड़फड़ा रही है।

'प्रेमघन' ने 'जीर्ण जनपद अथवा दुर्दशा दत्तापुर' नामक कविता में तो प्रकृति-प्रेम का बहुत ही सुन्दर परिचय दिया है। इसमें कवि की रागात्मकता अधिक तीव्रता व स्पष्टता के साथ प्रकट हुई है। एक रमणीय चित्र देखिए-

रम्यस्थल बहु मुक्त लदे फल फूलन सों वन।
ताल नदी नारे जित सोहत, अति मोहत मन।।
शैल अनेक शृंग कन्दरा दरी खोहन मय।
सजित सुडौल परे पाहन चट्टान समुच्चय।।
बहत नदी हहरात जहाँ, नारे कलरव करि।
निदरत जिनहि नीर झर शीतल स्वच्छ नीर झरि।।
सघन लता द्रुम सों अधित्यका जिनकी सोहत।
किलकारत बानर लंगूर जित, नित मन मोहत।।
हरी भरी घासन सों अधित्यका छबि छाई।
बहु गुणदायक औषधीन संकुल उपजाई।।[९]

चित्रकार के तूलिका-कौशल को प्रकट करने वाला 'प्रेमघन' का एक रमणीय चित्र देखिए-

कंटवासी बसवारिन को रकबा जहँ मरकत।
बीच बीच कंटकित वृक्ष जाके बढ़ि लरकत।।
छाई जिन पैं कुटिल कटीली बेलि अनेकन।
गोलहु गोली भेदि न जाहि जाहि बाहर सन।।
जाके बाहर अति चौड़ी गहिरी लहराती।
खंदक तीन ओर निर्मल जल भरी सुहाती।।[१०]

ताल, नदी-नालों तक का प्रेम तो प्रायः सभी में थोड़ा-बहुत रहता है। पर उससे आगे बढ़कर शैल, शृंग, कन्दरा, खंदक, कँटीले वृक्ष, कुटिल कँटीली लता, दरी, खोह, पत्थर, चट्टान, अधित्यका, बानर, लंगूर, औषधि आदि के प्रति प्रेम कवि की वास्तविक 'रोमांटिक' प्रकृति का सूचक है। भारतेन्दु में भी ऐसा प्रकृति प्रेम नहीं पाया जाता। वे मुख्यतः मानव और

मानव-जगत् के ही कवि थे, मनुष्येतर बाह्य प्रकृति के नहीं। हिन्दी-काव्य में ऐसा सबसे पहले 'प्रेमघन' में ही दिखाई पड़ रहा है। इस युग में ठाकुर जगमोहन सिंह भी प्रकृति के एक ऐसे ही कवि और हैं।[११] प्रकृति के प्रति इन दोनों की जैसी दृष्टि थी वह आगे हिन्दीकाल में पं० श्रीधर पाठक, पं० रामनरेश त्रिपाठी तथा 'हरिऔध' आदि कवियों में ही दिखाई पड़ी। कवि साधारण से साधारण वस्तुओं को भी पूरे ब्यौरों के साथ पाठक की कल्पना में प्रस्तुत किये बिना सन्तुष्ट नहीं होता। यथा-

जामैं राजत कुटी एक फूसहि सों छाई।
आलड्-वाल विहीन तऊ अतिमय सुखदाई।।
जामैं चौकी एक खाटहू इक साधारन।
बिछि रहति इक ओर सहित सामान्य अस्तरन।।
कम्मल गुनरी और चटाई हू द्वै इक जित।
रहति जहाँ आगन्तुक जन के बैठन के हित।।
द्वै ही इक जल-पात्र और सामान्य उपकरन।
प्रस्तुत वा मैं रहत सहित द्वै इक सेवक जन।।[१२]

समय के निष्ठुर परिवर्तन कितनी मार्मिकता से अनुभव करता है-

अब नहिं वरषागमन में वैसी आँधी आवैं।
नहिं घन अठवारन लौं वैसी झरी लगावैं।।
नहिं वैसो जाड़ा वसन्त नहिं ग्रीषम हूँ तस।
आवत मनहि लुभावत हरखावत आगे कस।।
नहिं वैसे लखि परत शस्य लहरत खेतन में।
नहिं वन में वह शोभा, नहिं विनोद जन जन में।।

ऊपर के चित्रों में मानव और प्रकृति के बीच सुन्दर सामंजस्य लक्षित हुआ है। अभाव और दरिद्रता के चित्रण में कवि की गहरी मानवीय सहानुभूति के दर्शन होते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सब वास्तविक और गम्भीर देश-प्रेम की ही उपज है।

रत्नाकर रस-सिद्ध कवि हैं, पर हैं वे पूर्णतया पुरानी परिपाटी के ही। प्रकृति का उन्होंने मुख्यतः उद्दीपन-गत प्रयोग ही किया है। कई स्थलों पर उनकी प्रकृति-दृष्टि का भी अच्छा परिचय मिलता। देखिए-

दूबनि पै झलमलत बिमल जल सुहाए,
मनु बन पै घन वारि मंजु मुकूता बगराए।
चंपा गुंज लवंग मालती लता सुहाई।
कुसुम कलित अति ललित तमालनि सौं लपटाई।
साजे हरित दुकूल फूल छाजे बनिता बहु,
निज निज नाहैं अंक सिसंक रही भरि मानहुं।।[१३]

प्रकृति के कठोर रूपों को भी इन्होंने अपेक्षाकृत अधिक रसात्मकता व तल्लीनता से वर्णन किया है। ''गंगावतरण' नामक प्रसिद्ध कविता में कवि ने आकाश से उतरती विशाल गंगा की प्राकृतिक शोभा के वर्णन में जो तल्लीनता व सूक्ष्मदर्शिता दिखाई है, वह पूर्ण प्रशंसनीय है। अन्ततः असीम आकाश में उतरती गंगा की विशाल व भीम जलराशि का यह रोमांचकारी भव्य दृश्य देखिए-

निज दरेर सौं पौन पटल फारिति, फहरावति,
सुर पुर के अति सघन घोर घन घसि घहरावति।
चली धार धुधकार धरा दिसि काटति कावा,
सगर सुरनि के पाप ताप पर बोलति धावा।।
रूचिर रजतमय कै बितान तान्यौ अति विस्तर,

निष्कर्ष

कवियों ने असाधारण ही नहीं प्रकृति के चिरपरिचित, सामान्य, रूखे या बैडौल रूपों पर भी दृष्टि डाली। वर्तमान युग में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में जो अनगढ़, रूखे और भदेस के प्रति प्रेम है उसका मूल हमें यहाँ देखने को मिल सकता है। कवियों ने इस काल में यथातथ्य-वर्णन अथवा दृश्य-चित्रण की रूचि तो प्रदर्शित की ही पर, प्रकृति के कोमल व कठोर दोनों ही रूपों को देखने की भी सहृदयता दिखाई। अपनी ही आँखों से वस्तु-व्यापारों के सूक्ष्म व्यौरों पर ध्यान देकर उन्होंने चित्रण किया, केवल परंपरा-प्राप्त ऋतु-ज्ञान के आधार पर ही नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि रीतिकालीन कविता में कवियों का 'रतिभाव' जहाँ तक सीमित था, भारतेंदुकाल में वह वहाँ से और आगे बढ़कर मुख्यतः देश-प्रेम व प्रकृति-प्रेम की दिशाओं में विस्तृत हुआ।

संदर्भ ग्रन्थ

१. भारतेन्दु ग्रंथावली, भाग २, पृ० ५६।
२. प्रेमघन सर्वस्व, भाग १, 'सौंदर्य वर्णन' पृ० २१०-२११।
३. भारतेन्दु ग्रंथावली, भाग २, पृ० ८०२।
४. भारतेन्दु, 'चन्द्रावली नाटिका', चौथा अंक।
५. भारतेन्दु ग्रंथावली (गंगा वर्णन)।
६. भारतेन्दु ग्रंथावली, भा० २, 'प्रात समीरन' पृ० ६८७।
७. Brooke SA, George Sampson. 'English Literature, p. 149.
८. भारतेन्दु ग्रंथावली, भाग २, 'बकरी-विलाप', पृ० ६६१।
९. प्रेमघन सर्वस्व, भाग १, पृ० २।
१०. वही, पृ० ६।
११. पं रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० ७१६।
१२. प्रेमघन सर्वस्व, 'दुर्दशा दत्तापुर'।
१३. 'रत्नाकर' (बाबू श्यासुंदर दास द्वारा सम्पादित) से उद्धृत।